IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का सामाजिक- आर्थिक दृष्टिकोण: भारतीय संदर्भ में विश्लेषण

डॉ. सुनील कुमार पंडित

सहायक प्राध्यापक

राजनीति विज्ञान

एस. एम. कॉलेज , भागलपुर

टी. एम. बी. यु. ,भागलपुर

पंडित दीनदयाल उपाध्याय न केवल एक राजनेता थे, बल्कि भारतीय चिंतन परंपरा के एक ऐसे मौलिक विचारक थे जिन्होंने पश्चिमी राजनीतिक और आर्थिक सिद्धांतों के बीच एक भारतीय विकल्प प्रस्तुत किया। उनका 'एकात्म मानववाद' एक ऐसी समन्वित दृष्टि है, जिसमें मनुष्य को केवल आर्थिक उत्पादक या उपभोक्ता नहीं, बल्कि एक चैतन्य, नैतिक और आध्यात्मिक सत्ता के रूप में देखा गया है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि भारतीय समाज की रचना, उसकी आवश्यकताएँ और उसकी चेतना पश्चिमी समाजों से भिन्न है, अतः इसके समाधान भी भारतीय संस्कृति की अंतःप्रेरणा से ही निकल सकते हैं। उनकी विचारधारा यह मानती है कि समाज, व्यक्ति और राष्ट्र अलग-अलग नहीं, बल्कि एक अविभाज्य इकाई के रूप में जुड़े हुए हैं। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंग मिलकर शरीर की क्रियाशीलता और स्वास्थ्य को बनाए रखते हैं, उसी प्रकार व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र एक जीवंत इकाई के रूप में कार्य करते हैं। एकात्म मानववाद में इस जीवन-दृष्टि को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। इसके अनुसार, समाज की प्रगति तभी संभव है जब व्यक्ति का सर्वांगीण विकास हो और वह विकास केवल आर्थिक नहीं, बल्कि शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक चारों स्तरों पर हो। उपाध्याय जी का मानना था कि केवल योजनाओं और आंकड़ों के सहारे समाज का विकास नहीं किया जा सकता, जब तक उस समाज की आत्मा को न समझा जाए। वे इस बात पर बल देते थे कि भारत का विकास स्वदेशी सिद्धांतों और भारतीय संस्कृति की आत्मा के अनुरूप ही संभव है। उनके अनुसार, पूंजीवाद जहां व्यक्ति को अत्यधिक स्वार्थी और भोगवादी बनाता है, वहीं साम्यवाद व्यक्ति को राज्य का दास बना देता है और उसकी स्वतंत्रता तथा सृजनशीलता का ह्रास करता है। इन दोनों का विरोध करते हुए उन्होंने एक ऐसा मार्ग सुझाया जो व्यक्ति की गरिमा, समाज की एकता, और राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान को एकसूत्र में बांधता है।

एकात्म मानववाद एक तरह से भारतीय समाज के पुनर्गठन की रूपरेखा है, जो आर्थिक योजनाओं, सामाजिक संरचना और राजनीतिक दिशा को एक साझा सांस्कृतिक दृष्टि में समाहित करता है। इस विचार में ग्राम स्वराज, विकेन्द्रीकरण, स्थानीय संसाधनों पर आधारित आत्मनिर्भरता और नैतिक मूल्यों पर आधारित नेतृत्व के दर्शन मिलते हैं। उन्होंने यह संदेश दिया कि तकनीक और विज्ञान का उपयोग अवश्य किया जाए, परंतु वह भारतीय मूल्यों और जीवनशैली के अनुरूप हो। आज जबकि भारत तीव्र आर्थिक विकास, शहरीकरण और वैश्वीकरण के दौर से गुजर रहा है, एकात्म मानववाद की यह चेतना अत्यंत प्रासंगिक हो गई है। यह केवल एक राजनीतिक वैकल्पिक विचारधारा नहीं, बल्कि राष्ट्र की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पुनर्रचना का मार्गदर्शन करती है। यह दृष्टि हमें यह समझने में मदद करती है कि भारत का पुनर्निर्माण केवल भौतिक संसाधनों से नहीं, बल्कि आत्मा से जुड़ी विचारधाराओं से होगा — जहां व्यक्ति के भीतर दायित्वबोध, समाज के

प्रति संवेदना और राष्ट्र के लिए समर्पण की भावना हो। इस प्रकार, पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद आज के समय में एक वैचारिक पथप्रदर्शक के रूप में खड़ा है, जो भारतीय चिंतन की मौलिकता, उसकी व्यापकता और समग्रता का प्रतीक बन चुका है। उनके विचार आज भी हमें यह स्मरण कराते हैं कि भारत का भविष्य तभी उज्जवल होगा जब उसकी आत्मा, संस्कृति और मूल्य उसके विकास के केंद्र में होंगे।

बीज शब्द:- दीनदयाल उपाध्याय एकात्म मानववाद, भारतीय सामाजिक संरचना, ग्राम स्वराज, विकास और संस्कृति, मानव विकास

सन् 1965 में भारतीय जनसंघ के अधिवेशन में पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित 'एकात्म मानववाद' केवल कोई राजनीतिक घोषणापत्र नहीं था, बल्कि यह भारतीय चिंतन परंपरा की आत्मा से जन्मी एक समग्र, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि थी। यह विचारधारा उस व्यापक और गहन भारतीय दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसमें मनुष्य, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण प्रकृति को पृथक-पृथक इकाइयों के रूप में नहीं, बल्कि एक परस्पर संबद्ध, पूरक एवं एकीकृत तंत्र के रूप में देखा जाता है। यह उसी प्राचीन भारतीय संस्कृति का आधुनिक रूपांतरण है जो "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसे सार्वभौमिक जीवन मूल्यों को अभिव्यक्त करती है। पंडित उपाध्याय के अनुसार, मानव जीवन केवल भौतिक आवश्यकताओं या बुद्धि के आधार पर परिभाषित नहीं किया जा सकता। मनुष्य एक बहुआयामी सत्ता है जिसमें चार स्तरों - शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का संतुलित समन्वय होता है। वे मानते थे कि यदि कोई नीति या योजना केवल शरीर की सुविधाओं या बौद्धिक तुष्टि को लक्ष्य बनाए और आत्मा की उपेक्षा करे, तो वह अधूरी होगी और मानव जीवन के समग्र विकास को बाधित करेगी। 'एकात्म मानववाद' इसी समग्र विकास की दिशा में एक चिंतनशील मार्गदर्शक बनकर सामने आता है।[1]

पंडित उपाध्याय का मानना था कि समाज और राष्ट्र केवल प्रशासनिक या राजनीतिक इकाइयाँ नहीं हैं, बल्कि वे भी एक जीवंत एवं आत्मसंपन्न चेतनाएं हैं, जिनकी अपनी सांस्कृतिक आत्मा होती है। उन्होंने 'राष्ट्रीय आत्मा' (National Soul) की अवधारणा को विस्तार देते हुए कहा कि जैसे व्यक्ति में आत्मा उसकी पहचान और दिशा तय करती है, वैसे ही राष्ट्र की आत्मा उसके सांस्कृतिक बोध, परंपराओं, जीवन-मूल्यों और आध्यात्मिक चेतना में समाहित होती है। राष्ट्र की उन्नति केवल भौतिक संसाधनों या संस्थागत संरचनाओं से नहीं होती, बल्कि उसकी आत्मा की पहचान और सम्मान से होती है।[2] एकात्म मानववाद के दर्शन में पंडित उपाध्याय ने पूंजीवाद और समाजवाद, दोनों पश्चिमी विचारधाराओं की गहन समीक्षा की। उनके अनुसार पूंजीवाद जहां व्यक्ति को भोग, प्रतिस्पर्धा और आत्मकेंद्रित उपभोक्तावाद की दिशा में ले जाता है, वहीं समाजवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता, नैतिक चेतना और आध्यात्मिकता को दबा देता है।[3] इन दोनों विचारधाराओं में या तो व्यक्ति का अत्यधिक महत्त्व होता है, या वह पूर्णतः सामूहिक संरचना में विलीन हो जाता है। इसके विपरीत, एकात्म मानववाद व्यक्ति और समाज के मध्य आत्मिक एवं नैतिक संतुलन का पक्षधर है।[4] पंडित उपाध्याय का यह भी स्पष्ट मत था कि भारत का विकास पथ उसकी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा होना चाहिए। भारत की उन्नति केवल शहरों के विस्तार, भारी उद्योगों की स्थापना और आयातित विकास मॉडलों से नहीं होगी, बल्कि तभी संभव है जब ग्राम्य जीवन, पारिवारिक व्यवस्था, पारंपरिक कौशल, स्वदेशी उत्पादन और सांस्कृतिक चेतना को प्रोत्साहन मिले। उन्होंने 'स्वदेशी', 'सहज जीवन', 'नैतिकता आधारित विकास', 'धार्मिक सहिष्णुता' और 'स्थायी जीवनशैली' को भारत के उपयुक्त विकास मानकों के रूप में प्रस्तुत किया।[5]

एकात्म मानववाद की एक और विशेषता इसकी पर्यावरण के प्रति संवेदनशील दृष्टि है। यह विचारधारा मनुष्य और प्रकृति के संबंध को शोषणात्मक न मानकर सह-अस्तित्व और संरक्षण आधारित मानती है। पंडित उपाध्याय का चिंतन यह दर्शाता है कि जब तक हम प्रकृति के संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग नहीं करेंगे और जैव विविधता का सम्मान नहीं करेंगे, तब तक स्थायी और समावेशी विकास संभव नहीं है।[6] आज जब सम्पूर्ण विश्व जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिकी असंतुलन की समस्याओं से जूझ रहा है, तब 'एकात्म मानववाद' की यह चेतावनी और भी प्रासंगिक हो जाती है। इस प्रकार, 'एकात्म मानववाद' केवल एक राजनीतिक विचार नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण और आत्म-चिंतन का आह्वान है। यह भारत की आत्मा, उसकी सांस्कृतिक विरासत और जीवन मूल्यों से अनुप्राणित एक ऐसी विकास-दृष्टि है, जो भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच संतुलन की बात करती है। यह विचारधारा आज भी भारत के लिए सामाजिक न्याय, आत्मनिर्भरता, सांस्कृतिक स्वाभिमान और मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना हेतु एक अत्यंत प्रासंगिक और प्रेरणादायक दृष्टिकोण प्रदान करती है।[7]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का सामाजिक चिंतन भारतीय जीवन-दृष्टि, सांस्कृतिक परंपराओं और नैतिक मूल्यों पर आधारित था। उनके अनुसार, समाज केवल भौतिक हितों से जुड़ा हुआ मानवों का समूह नहीं होता, बल्कि यह एक जीवंत संस्था है, जो अपनी चेतना, संस्कृति, परंपरा और आत्मा से संचालित होती है। उन्होंने समाज को एक 'जीवंत जीव' के रूप में देखा, जिसमें विभिन्न वर्ग, जातियाँ, पेशे और संस्थाएँ शरीर के अंगों के समान होते हैं - कोई भी अंग दूसरे से छोटा या बड़ा नहीं होता, बल्कि सभी मिलकर समाज रूपी शरीर को संतुलित और सशक्त बनाते हैं। उनका मानना था कि यदि समाज के किसी एक हिस्से को पीड़ा या उपेक्षा झेलनी पड़े, तो संपूर्ण समाज व्याधिग्रस्त हो जाता है। इसीलिए उन्होंने समरसता की भावना को सामाजिक व्यवस्था की नींव माना।[8] उनके अनुसार, जातिगत भेदभाव, वर्ग संघर्ष, ऊँच-नीच की भावना जैसे तत्व भारतीय समाज के लिए विष के समान हैं। उन्होंने बार-बार इस बात पर बल दिया कि समाज में समता, सहभागिता और आत्मसम्मान का प्रसार होना चाहिए, ताकि हर व्यक्ति अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए स्वयं को समाज का अभिन्न अंग महसूस करे। उनका 'अंत्योदय' का सिद्धांत इसी चिंतन का व्यावहारिक स्वरूप था। इसका अर्थ था - समाज के सबसे अंतिम, सबसे वंचित और सबसे उपेक्षित व्यक्ति के जीवन में सुख, सुविधा और गरिमा का प्रवेश। उपाध्याय मानते थे कि जब तक समाज के अंतिम व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती, तब तक कोई भी सामाजिक व्यवस्था पूर्ण नहीं मानी जा सकती। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि सामाजिक न्याय का अर्थ केवल आरक्षण या सरकारी योजनाएँ नहीं हैं, बल्कि इससे भी आगे बढ़कर आत्मनिर्भरता, नैतिक चेतना और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना है। उनका यह दृष्टिकोण न केवल भारतीय सामाजिक समस्याओं के समाधान की ओर संकेत करता है, बल्कि एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना भी करता है, जहाँ सह-अस्तित्व, दायित्वबोध और आत्मीयता के भाव से समाज आगे बढ़े।[9]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की सामाजिक दृष्टि भारतीय समाज की सांस्कृतिक अखंडता और समरसता पर आधारित थी। उनके विचारों की जड़ें भारतीय दर्शन और परंपरा में थीं, जहाँ समाज को एक सजीव संस्था माना गया है, जो विविधता में एकता की भावना से संचालित होती है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि जाति, वर्ग, लिंग और भाषा के आधार पर समाज को विभाजित करना भारतीय संस्कृति के मूल स्वरूप के विरुद्ध है। उन्होंने विशेष रूप से जातिगत विभाजन और भेदभाव को सामाजिक समरसता के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध माना। उपाध्याय का मत था कि प्राचीन भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था कार्यविभाजन पर आधारित थी, न कि सामाजिक ऊँच-नीच या जन्म आधारित श्रेष्ठता पर। उन्होंने कहा कि "जातियाँ समाज के अवयव हैं, न कि उसके शोषक और शोषित वर्ग।"[10] उनके अनुसार, जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंग अपने-अपने कार्यों से शरीर को सुचारु रूप से चलाने में योगदान करते हैं, उसी प्रकार समाज के विभिन्न वर्ग भी परस्पर सहयोग के द्वारा एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण करते हैं। पंडित उपाध्याय का मानना था कि वर्ग संघर्ष और सामाजिक विद्वेष के सिद्धांत विदेशी विचारधाराओं से प्रेरित हैं, जो भारतीय परंपरा और सामाजिक संरचना के अनुकूल नहीं हैं। वे मार्क्सवादी संघर्ष के सिद्धांत को भारतीय संदर्भ में अनुपयुक्त मानते थे और इसके स्थान पर "समरसता" को सामाजिक संगठन का मूल आधार बनाना चाहते थे। उनके अनुसार, समरसता केवल एक सामाजिक अवधारणा नहीं है, बल्कि यह एक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्य है, जिसमें सभी व्यक्ति - चाहे वे किसी भी वर्ग, जाति या धर्म के हों - एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं। पंडित उपाध्याय ने यह स्पष्ट किया कि समाज की वास्तविक उन्नति तभी संभव है जब हम जातिगत घृणा, क्षेत्रीय असमानता और लिंग आधारित भेदभाव से ऊपर उठकर 'भारतीयता' की व्यापक भावना को आत्मसात करें। उनके अनुसार, समाज की एकता और अखंडता के लिए यह आवश्यक है कि सभी वर्गों को सम्मान और समान अवसर मिले, न कि उन्हें कृत्रिम रूप से अलग-अलग श्रेणियों में विभाजित किया जाए। उन्होंने कहा था - "हमें ऐसा समाज चाहिए, जिसमें हर व्यक्ति को समान आत्मसम्मान और कर्तव्य-बोध के साथ जीने का अवसर मिले।"[11] अंततः, पंडित दीनदयाल उपाध्याय की सामाजिक दृष्टि संघर्ष-मुक्त, समन्वित, सहिष्णु और समरस समाज की कल्पना करती है, जहाँ कोई वर्ग न तो शोषक हो और न ही शोषित, बल्कि सभी मिलकर राष्ट्र की उन्नति में सहभागी बनें। उन्होंने सामाजिक सुधार के लिए केवल नीति या कानून पर निर्भर रहने की बजाय सामाजिक चेतना और आत्मिक विकास पर बल दिया, जिससे समाज में वास्तविक परिवर्तन और समरसता की स्थापना हो सके।[12]

पंडित उपाध्याय ने जिस विचार को अपने सामाजिक चिंतन का केंद्रबिंदु बनाया, वह था - 'अंत्योदय'। इसका अर्थ है: "अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति का उदय।" वे मानते थे कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति का मूल्यांकन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि उसके सबसे वंचित, सबसे दुर्बल और सबसे उपेक्षित नागरिक की स्थिति में कितना सुधार हुआ है। उन्होंने कहा - "हमें ऐसी सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है, जो समाज के सबसे नीचे खड़े व्यक्ति तक सुख, सुविधा और सम्मान की भावना पहुँचा सके।" पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक

चिंतन का केंद्रीय आधार 'अंत्योदय' था - अर्थात् समाज के अंतिम, सबसे वंचित और उपेक्षित व्यक्ति का उदय। उनके अनुसार, किसी राष्ट्र की प्रगति का वास्तविक मापदंड यह नहीं होना चाहिए कि शहरों में गगनचुंबी इमारतें कितनी हैं या सकल घरेलू उत्पाद कितना बढ़ा है, बल्कि यह देखा जाना चाहिए कि गांवों के निर्धनतम व्यक्ति की जीवन-स्थिति में कितना सुधार हुआ है।[13] उनका यह दृष्टिकोण महज़ एक आर्थिक कार्यक्रम नहीं था, बल्कि यह भारतीय दर्शन और सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित एक नैतिक मूल्य था। 'अंत्योदय' केवल दया या सहायता का भाव नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समता और सहभागिता की ठोस अभिव्यक्ति है। पंडित उपाध्याय मानते थे कि जब तक समाज के अंतिम व्यक्ति तक अवसर, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और गरिमा नहीं पहुँचेगी, तब तक कोई भी विकास अधूरा और असंतुलित रहेगा। उन्होंने यह भी कहा कि 'अंत्योदय' की भावना हमें शासन और नीतियों में भी अपनानी चाहिए। योजनाएं इस प्रकार बननी चाहिएँ कि उनका पहला लाभ उस व्यक्ति तक पहुँचे जो सबसे अधिक वंचित है। यही कारण है कि उनका यह विचार आज की 'समावेशी विकास' की अवधारणा से कहीं अधिक गहराई और संवेदना से जुड़ा हुआ है। पंडित उपाध्याय का यह चिंतन न केवल सामाजिक नीति के लिए मार्गदर्शक है, बल्कि एक नैतिक आह्वान भी है - कि हम अपनी दृष्टि को केवल केंद्रीकृत विकास की ओर न रखें, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा और सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए कार्य करें।[14]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की सामाजिक दृष्टि समरसता, सहअस्तित्व और सांस्कृतिक एकता पर आधारित थी। वे मानते थे कि भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था मूलतः कार्य-विभाजन के लिए थी, न कि श्रेणीगत श्रेष्ठता के लिए। आधुनिक समय में जिस तरह जातिगत भेदभाव और ऊँच-नीच की भावना ने समाज को विभाजित किया है, वह हमारी सांस्कृतिक आत्मा के प्रतिकूल है। उपाध्याय जी का मानना था कि जातिगत द्वेष, क्षेत्रीय असमानता, वर्ग संघर्ष और लिंग भेद जैसी समस्याएँ समाज के नैसर्गिक विकास को बाधित करती हैं। इसलिए उन्होंने एक समरस, समन्वित और सहिष्णु समाज की आवश्यकता पर बल दिया, जिसमें व्यक्ति केवल अपने अधिकारों की अपेक्षा न करे, बल्कि अपने कर्तव्यों के प्रति भी सजग हो। उनके अनुसार, समरसता केवल सामाजिक संतुलन का उपाय नहीं, बल्कि यह एक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्य है, जिसमें समाज के सभी वर्ग परस्पर पूरक बनकर राष्ट्र की उन्नति में सहभागी होते हैं। जब तक समाज में परस्पर सम्मान, सहयोग और नैतिक बंधुत्व का भाव नहीं आता, तब तक केवल नीतियाँ और कानून सामाजिक समानता नहीं ला सकते।[15]

उपाध्याय जी के सामाजिक चिंतन का केंद्रबिंदु 'अंत्योदय' था, जिसका अर्थ है अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति का विकास। उन्होंने कहा था कि किसी भी राष्ट्र की प्रगति को इस आधार पर मापा जाना चाहिए कि समाज के सबसे वंचित, सबसे दुर्बल और उपेक्षित व्यक्ति की स्थिति में कितना सुधार आया है। यह चिंतन महात्मा गांधी के 'अंतिम आदमी' की अवधारणा के निकट था, किंतु उसमें सांस्कृतिक चेतना और भारतीयता की भावनात्मक अभिव्यक्ति भी समाहित थी। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि हमें ऐसी सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है, जो अंतिम व्यक्ति तक सुख, सुविधा और सम्मान पहुँचा सके। वे केवल आर्थिक प्रगति को पर्याप्त नहीं मानते थे; उनका मानना था कि यदि कुछ वर्ग संपन्न हों और बाकी उपेक्षित रह जाएँ, तो वह प्रगति वास्तविक नहीं है। इसलिए उन्होंने आत्मनिर्भरता, आत्मगौरव और समता पर आधारित विकास का पक्ष लिया।[16]

सामाजिक न्याय के संदर्भ में उपाध्याय जी का दृष्टिकोण अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों के निर्वहन पर आधारित था। उनके अनुसार, सामाजिक न्याय केवल आरक्षण या सरकारी सहायता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आत्मसम्मान, सहभागिता और नैतिक दायित्व की भावना से युक्त होना चाहिए। उन्होंने हर नागरिक से आह्वान किया कि वह स्वयं से यह प्रश्न करे – "क्या मैं समाज के अंतिम व्यक्ति के हित में कार्य कर रहा हूँ? क्या मेरे निर्णय और व्यवहार समाज में समरसता ला रहे हैं या असंतुलन?" इस प्रकार, उपाध्याय जी का सामाजिक चिंतन एक ऐसे समाज की परिकल्पना करता है, जहाँ कोई शोषक या शोषित न हो, कोई ऊँचा या नीचा न हो, बल्कि सभी अपने धर्म और दायित्व को समझते हुए राष्ट्र के उत्थान में संलग्न हों।[17]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का सामाजिक दृष्टिकोण आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना उनके समय में था। समरसता, अंत्योदय और नैतिक सहयोग के सिद्धांत, केवल सामाजिक नीति नहीं बल्कि एक जीवन-दृष्टि हैं, जो भारत को आत्मनिर्भर, संगठित और समावेशी राष्ट्र बनाने की ओर ले जाते हैं। यदि भारतीय समाज उनके विचारों को आत्मसात करे, तो न केवल सामाजिक अन्याय दूर होगा, बल्कि भारत एक सांस्कृतिक रूप से जागरूक, नैतिक रूप से समर्पित और आर्थिक रूप से सशक्त राष्ट्र बन सकेगा।[18]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक दृष्टिकोण भारतीय समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक और भौगोलिक वास्तविकताओं पर आधारित था। वे मानते थे कि किसी भी राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था उसकी संस्कृति, परंपरा और सामाजिक संरचना के अनुरूप ही विकसित होनी चाहिए। उपाध्याय पश्चिमी पूंजीवाद के भोगवादी और उपभोक्तावादी मॉडल को भारत के लिए अनुपयुक्त मानते थे, क्योंकि वह व्यक्ति को केवल एक आर्थिक इकाई के रूप में देखता है, न कि एक नैतिक और सामाजिक प्राणी के रूप में।[19] इसी प्रकार वे समाजवादी व्यवस्था में राज्य की अत्यधिक भूमिका और नियंत्रण को भी मानव स्वभाव के प्रतिकूल मानते थे, क्योंकि इससे व्यक्ति की सृजनात्मकता, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता पर आघात पहुँचता है। उनके अनुसार, भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और दिशा भारतीयता के मूल तत्वों से संचालित होनी चाहिए, जिसमें व्यक्ति की गरिमा, सामाजिक समरसता और धर्मबोध की प्रमुख भूमिका हो। उन्होंने 'स्वदेशी', 'स्वावलंबन' और 'विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था' जैसे सिद्धांतों को आर्थिक नीति के मूल में रखा। उनका मानना था कि भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश के लिए विकेन्द्रीकरण ही उपयुक्त मॉडल है, जिसमें उत्पादन और उपभोग स्थानीय स्तर पर संतुलित हों, जिससे न केवल संसाधनों की बर्बादी रुके, बल्कि स्थानीय रोजगार और आत्मनिर्भरता को भी बल मिले।[20] उपाध्याय कृषि को भारत की रीढ़ मानते थे और कहते थे कि जब तक कृषि और ग्राम आधारित उद्योगों को सशक्त नहीं किया जाएगा, तब तक आर्थिक विषमता और ग्रामीण-शहरी अंतर समाप्त नहीं होगा। वे आधुनिक तकनीक, सिंचाई व्यवस्था, पारदर्शी बाजार नीति और न्यूनतम समर्थन मूल्य जैसी व्यवस्थाओं के पक्षधर थे, जो किसानों को आर्थिक सुरक्षा और सम्मानजनक जीवन प्रदान कर सकें। साथ ही, उन्होंने कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प, लघु उद्योग और स्वशक्ति समूहों के सशक्तिकरण को आवश्यक बताया, जिससे स्थानीय संसाधनों के माध्यम से आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त हो सके।[21] पंडित उपाध्याय आर्थिक गतिविधियों में नैतिकता और धार्मिकता (धर्म के व्यापक अर्थ में - अर्थात् कर्तव्यबोध, न्याय और सदाचार) के समावेश पर बल देते थे। उनके अनुसार, आर्थिक नीति केवल लाभ या हानि पर आधारित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसमें यह विचार होना चाहिए कि क्या वह नीति समाज के सभी वर्गों - विशेष रूप से वंचितों और ग्रामीण समुदायों - के हित में है या नहीं। उनका विचार था कि यदि अर्थव्यवस्था नैतिक मूल्यों से रहित होगी, तो वह अंततः समाज में असंतुलन, शोषण और नैतिक पतन को जन्म देगी। इस प्रकार, पंडित दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिंतन एकात्म मानववाद के सिद्धांतों पर आधारित था, जिसमें व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित करते हुए, राष्ट्र को आत्मनिर्भर, न्यायसंगत और नैतिक रूप से समृद्ध बनाने का उद्देश्य निहित था।[22]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्वदेशी विचार के प्रबल समर्थक थे और आत्मनिर्भरता को राष्ट्र की सशक्तता का मूल आधार मानते थे। उनके अनुसार, आर्थिक स्वतंत्रता ही राजनीतिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता का आधार है। वे मानते थे कि भारत को अपनी आर्थिक नीतियों और योजनाओं को पश्चिमी देशों के भोगवादी और केंद्रीकृत मॉडल के आधार पर नहीं, बल्कि भारतीय समाज की संरचना, आवश्यकताओं और परंपराओं के अनुरूप तैयार करना चाहिए।[23] उनके आर्थिक चिंतन का मूल उद्देश्य केवल उत्पादन या संपत्ति का अधिकतम संग्रह नहीं, बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को गरिमामय जीवन, न्यायसंगत संसाधन और आत्म-सम्मान का अधिकार दिलाना था। उपाध्याय जी विकेन्द्रीकरण के जबरदस्त पक्षधर थे। उनका मत था कि आर्थिक सत्ता और संसाधनों का केंद्रीकरण, चाहे वह राज्य के हाथों हो या कुछ पूंजीपतियों के हाथों, दोनों ही स्थितियाँ जनहित के प्रतिकूल हैं। इसलिए उन्होंने ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना की जिसमें ग्राम आधारित उत्पादन, स्थानीय स्वशक्ति समूह, कुटीर एवं लघु उद्योग, तथा सहकारिता आधारित व्यापारिक ढाँचा हो। उन्होंने कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की संज्ञा दी और इसके विकास के लिए आधुनिक तकनीकों, प्रभावशाली सिंचाई प्रणाली, किसानों को न्यायोचित मूल्य दिलाने वाली बाजार व्यवस्था और न्यूनतम समर्थन मूल्य जैसी योजनाओं को अनिवार्य बताया। उनका यह भी स्पष्ट मत था कि आर्थिक विकास केवल तकनीकी या प्रशासनिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह एक नैतिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया भी है। अतः उन्होंने आर्थिक नीति में 'धर्म' को स्थान देने की बात की - जहाँ धर्म का अर्थ केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि "कर्तव्यबोध" और "नैतिक उत्तरदायित्व" है। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि किसी भी आर्थिक निर्णय के पीछे यह विचार अवश्य होना चाहिए कि उसका समाज के सबसे वंचित वर्ग पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार, उपाध्याय का आर्थिक चिंतन एक समन्वित, मानवीय और भारतीय संदर्भों में विकसित स्वदेशी मॉडल की ओर संकेत करता है।[24]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक दृष्टिकोण भारतीय समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक और भौगोलिक वास्तविकताओं पर आधारित था। वे न तो पश्चिमी पूंजीवादी व्यवस्था के अंधानुकरण के पक्ष में थे, और न ही समाजवादी राज्य नियंत्रण की अति पर निर्भरता के। उनके अनुसार, भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और दिशा भारतीयता के मूल तत्वों से संचालित होनी चाहिए, जिसमें व्यक्ति की गरिमा,

सामाजिक समरसता और धर्मबोध की प्रमुख भूमिका हो। उन्होंने आर्थिक विकास को मात्र जीडीपी या उत्पादन बढ़ाने तक सीमित नहीं माना, बल्कि उसे मानव और समाज के नैतिक उत्थान से जोड़ा। उनके आर्थिक चिंतन में लोककल्याण, आत्मिक विकास और सामाजिक संतुलन जैसे तत्वों का गहरा समावेश था। पंडित उपाध्याय स्वदेशी विचार के प्रबल समर्थक थे और आत्मनिर्भरता को राष्ट्र की सशक्तता का आधार मानते थे। वे इस बात पर बल देते थे कि भारत को अपनी उत्पादन प्रणाली को बाहरी मॉडल पर नहीं, बल्कि अपनी परंपराओं और आवश्यकताओं के अनुरूप विकसाना चाहिए। उन्होंने विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था की आवश्यकता पर जोर दिया, जहाँ उत्पादन के केंद्र गाँव और छोटे-छोटे क्षेत्रीय समूह हों, न कि केवल बड़े उद्योग या शहरी क्षेत्र। उनका मानना था कि ग्रामीण भारत की आर्थिक रीढ़ कृषि है, जिसे आधुनिक तकनीक, बेहतर सिंचाई प्रणाली, पर्याप्त विपणन साधन और न्यूनतम समर्थन मूल्य के माध्यम से सशक्त किया जाना चाहिए। उनके लिए आर्थिक नीति तब तक सार्थक नहीं हो सकती जब तक वह गाँवों और आमजन की जरूरतों को प्राथमिकता न दे। पंडित उपाध्याय ने केवल कृषि पर ही नहीं, बल्कि कुटीर उद्योग, लघु उद्योग और स्वयं सहायता समूहों जैसे क्षेत्रीय रोजगार स्रोतों को भी आर्थिक विकास का मूल आधार माना। उनका मानना था कि स्थानीय संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान का उपयोग करके स्थायी विकास की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि अर्थनीति केवल लाभ आधारित नहीं हो सकती; उसमें नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व और धर्मबोध - अर्थात् कर्तव्यनिष्ठा - को भी स्थान देना होगा। उनकी दृष्टि में अर्थव्यवस्था का अंतिम उद्देश्य केवल समृद्धि नहीं, बल्कि समाज में संतुलन, समानता और समरसता लाना है। इस प्रकार उनका आर्थिक चिंतन न केवल आत्मनिर्भरता और विकेंद्रीकरण की वकालत करता है, बल्कि उसे भारतीय संस्कृति और जीवनदृष्टि से जोड़कर एक व्यापक सामाजिक दर्शन प्रस्तुत करता है, जो आधुनिक भारत की आर्थिक नीतियों के लिए भी एक मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।[25]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक और सामाजिक चिंतन आज के भारत के नीति-निर्माण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। उनके विचारों की जड़ें भारतीय परंपरा, संस्कृति और वास्तविकताओं में गहराई से जुड़ी हुई हैं। उन्होंने जिस *'एकात्म मानववाद'* की अवधारणा प्रस्तुत की, वह समग्र विकास की बात करती है - जिसमें व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक सभी पक्षों का संतुलित विकास शामिल है। आज के संदर्भ में जब भारत *"आत्मनिर्भर भारत अभियान"* के माध्यम से देशी संसाधनों और क्षेत्रीय उत्पादन क्षमता को बढ़ावा देने की दिशा में बढ़ रहा है, तब उपाध्याय जी का *विकेन्द्रित आर्थिक दृष्टिकोण* और *स्वदेशी* पर बल देने की नीति अत्यंत प्रासंगिक हो गई है। उन्होंने कहा था कि किसी भी राष्ट्र की अर्थनीति उस देश के सामाजिक-सांस्कृतिक ढांचे के अनुरूप होनी चाहिए, न कि केवल पश्चिमी मॉडल की नकल। इसलिए उनका विचार है कि गांवों को आर्थिक इकाइयों के रूप में सशक्त किया जाए - जहां *कृषि*, *कुटीर उद्योग*, *लघु उद्योग* और *स्थानीय शिल्प* के माध्यम से रोज़गार और आत्मनिर्भरता सुनिश्चित हो सके। वर्तमान में भारत की सरकार द्वारा चलाए जा रहे *"वोकल फॉर लोकल"*, *"स्टार्टअप इंडिया"*, *"डिजिटल इंडिया"* और *"एक जिला एक उत्पाद"* जैसी योजनाएं भी उपाध्याय जी के स्वदेशी, विकेंद्रीकरण और ग्राम आधारित आर्थिक चिंतन की प्रतिध्वनि हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया था कि नीति-निर्माण केवल आर्थिक लाभ के आधार पर नहीं, बल्कि नैतिकता, सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप होना चाहिए। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन आज के भारत के लिए केवल वैचारिक आधार नहीं है, बल्कि यह व्यावहारिक रूप से लागू किया जा रहा एक *राष्ट्रीय मॉडल* बनता जा रहा है, जो पश्चिमी पूंजीवाद और समाजवाद दोनों से भिन्न एक *भारतीय विकास दृष्टिकोण* को प्रस्तुत करता है।[26]

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा आरंभ की गई 'वोकल फॉर लोकल' मुहिम वस्तुतः पंडित दीनदयाल उपाध्याय के *स्वदेशी चिंतन* की आधुनिक पुनर्व्याख्या है। उपाध्याय जी का मानना था कि भारत जैसे सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से विविध देश का विकास तब तक टिकाऊ नहीं हो सकता, जब तक वह अपने *स्थानीय संसाधनों*, *स्थानीय आवश्यकताओं* और *स्थानीय कौशल* को प्राथमिकता नहीं देता।

स्वदेशी की अवधारणा उनके लिए केवल वस्त्र पहनने या उत्पाद उपभोग तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह एक समग्र *आर्थिक दर्शन* था, जो भारतीय समाज की आत्मनिर्भरता, गरिमा और सांस्कृतिक पहचान को केंद्र में रखता था। उनके अनुसार, भारत की आत्मा गांवों में बसती है, और जब तक गांवों के छोटे उद्योग, हस्तशिल्प, पारंपरिक व्यवसाय और स्थानीय शिल्प को बढ़ावा नहीं मिलेगा, तब तक राष्ट्र का समावेशी विकास संभव नहीं है। आज जब वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला कोविड-19 महामारी और भूराजनीतिक अस्थिरताओं के कारण बार-बार टूटती रही है, तब 'वोकल फॉर लोकल' जैसी पहलें भारत के लिए न केवल आत्मनिर्भरता की दिशा में एक ठोस कदम हैं, बल्कि वैश्विक निर्भरता से मुक्ति

पाने की एक रणनीतिक आवश्यकता भी बन गई हैं। यह दृष्टिकोण उपाध्याय के स्वदेशी विचार की ही पुष्टि करता है, जिसमें उत्पादन से लेकर उपभोग तक की प्रक्रिया स्थानीयकरण पर आधारित हो। 'एक जिला एक उत्पाद', 'मेक इन इंडिया', 'स्टार्टअप इंडिया' जैसी योजनाएं भी इसी आत्मनिर्भरता के दृष्टिकोण को मूर्त रूप दे रही हैं, जो उपाध्याय के उस विचार से जुड़ी हैं कि "विकास की दिशा बाहर से नहीं, भीतर से तय होनी चाहिए।" 'वोकल फॉर लोकल' की अवधारणा न केवल एक आर्थिक नीति है, बल्कि यह एक *वैचारिक आंदोलन* भी है जो उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित *स्वदेशी चेतना* को आधुनिक संदर्भ में आगे बढ़ाता है।[27]

'अंत्योदय' अर्थात समाज के सबसे अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति का उत्थान, पंडित दीनदयाल उपाध्याय की संपूर्ण विचारधारा का मूलाधार है। यह केवल एक सामाजिक दर्शन नहीं, बल्कि एक राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति को उसकी संपूर्णता में देखा जाता है – उसके भौतिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास की आवश्यकता को केंद्र में रखते हुए। उपाध्याय जी मानते थे कि जब तक समाज का सबसे वंचित, निर्धन, पीड़ित और उपेक्षित व्यक्ति सशक्त नहीं होता, तब तक किसी भी विकास की संकल्पना अधूरी और असमान होगी। उनके अनुसार, राष्ट्र का निर्माण केवल शहरों, पूंजीपतियों या अभिजात वर्ग के उत्थान से नहीं होता, बल्कि ग्राम, किसान, श्रमिक, महिला और आदिवासी जैसे समाज के उपेक्षित वर्गों के समावेश और उत्थान से होता है। यही कारण है कि उन्होंने 'अंत्योदय' को विकास नीति का आधार बनाने की वकालत की थी।[28] आज का 'आत्मनिर्भर भारत अभियान' उसी अंत्योदय के विचार का समकालीन रूप प्रतीत होता है, जिसमें भारत को न केवल वैश्विक स्तर पर आत्मनिर्भर बनाना है, बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि समाज के अंतिम व्यक्ति को भी सामाजिक न्याय, आर्थिक अवसर और गरिमापूर्ण जीवन मिले। प्रधानमंत्री जनधन योजना, उज्ज्वला योजना, सौभाग्य योजना, आयुष्मान भारत योजना, स्वामित्व योजना, पीएम किसान सम्मान निधि योजना, पीएम आवास योजना, स्किल इंडिया मिशन और मुद्रा योजना जैसी अनेक जनकल्याणकारी योजनाएं सीधे तौर पर उसी दर्शन से प्रेरित प्रतीत होती हैं, जिसकी कल्पना दीनदयाल जी ने दशकों पहले की थी। इन योजनाओं का उद्देश्य केवल सुविधाएं उपलब्ध कराना नहीं है, बल्कि नागरिकों को आत्मनिर्भर बनाकर उन्हें राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का सहभागी बनाना है। विशेष बात यह है कि इन योजनाओं की संरचना और कार्यान्वयन में 'अंत्योदय' की भावना स्पष्ट रूप से झलकती है – लाभार्थियों की पहचान में प्राथमिकता ग्रामीण, वंचित, महिला, अनुसूचित जाति और जनजाति वर्गों को दी जाती है। डिजिटल तकनीक, आधार, मोबाइल और जनधन खातों की मदद से योजना का लाभ बिना बिचौलियों के सीधे ज़रूरतमंदों तक पहुँचाया जा रहा है, जिससे पारदर्शिता और जवाबदेही भी सुनिश्चित हो रही है। यह दीनदयाल उपाध्याय के उस विचार की व्याख्या है जिसमें उन्होंने प्रशासन को लोककल्याणकारी, सुशासक और संवेदनशील बनाने की आवश्यकता बताई थी। आत्मनिर्भर भारत अभियान केवल आर्थिक रणनीति नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण का परिचायक है जो दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद और अंत्योदय की अवधारणा को साकार करने का प्रयास कर रहा है। यह अभियान भारत को केवल एक आर्थिक शक्ति नहीं, बल्कि एक नैतिक, आत्मनिर्भर और समतामूलक राष्ट्र के रूप में स्थापित करने की दिशा में एक ठोस कदम है, जो भारतीय संस्कृति, मूल्य और परंपरा पर आधारित विकास के मॉडल को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करता है।[29]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित सहकारिता आधारित विकास मॉडल न केवल आर्थिक न्याय का प्रतीक था, बल्कि यह भारतीय समाज की पारंपरिक सामूहिकता की भावना पर आधारित था। उनका मानना था कि आर्थिक विकास का उद्देश्य केवल कुछ लोगों को समृद्ध बनाना नहीं होना चाहिए, बल्कि समाज के सभी वर्गों को साथ लेकर चलना चाहिए। सहकारिता, उनके लिए, केवल एक आर्थिक संरचना नहीं थी, बल्कि एक सामाजिक दर्शन था, जो आत्मनिर्भरता, सहभागिता और नैतिकता पर आधारित था।[30] आज जब भारत में सहकारिता मंत्रालय की स्थापना की गई है और सहकारी संस्थाओं को पुनः सशक्त किया जा रहा है, तब उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता और बढ़ गई है। कृषि उत्पादन, दुग्ध व्यवसाय, कुटीर उद्योग, विपणन तंत्र और ग्रामीण बैंकिंग में सहकारी संस्थाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। यह विकास का एक ऐसा मॉडल है जो न लाभ के अधिकतमकरण की अंधी दौड़ में भाग लेता है और न ही वैश्विक पूंजी के दबाव में चलता है, बल्कि यह स्थानीय संसाधनों, समुदाय की भागीदारी और पारस्परिक विश्वास पर आधारित होता है। उपाध्याय का यह सहकारी दृष्टिकोण वर्तमान आर्थिक मॉडल के लिए एक नैतिक और सांस्कृतिक विकल्प प्रस्तुत करता है, जो आत्मनिर्भरता, समरसता और सामूहिक सशक्तिकरण की दिशा में प्रेरित करता है।[31]

आज के युग में जब वैश्वीकरण, पूंजीवाद और उपभोक्तावाद ने समाज में भौतिकवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया है, तब मानवीय संवेदनाएं, नैतिक मूल्य और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे पहलू पीछे छूटते जा रहे हैं। ऐसे समय में पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद न केवल आर्थिक या राजनीतिक दर्शन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह गहराई से नैतिक और सांस्कृतिक चिंतन को भी प्रस्तुत करता है। उनका मानना था कि मनुष्य केवल एक आर्थिक प्राणी नहीं है, बल्कि वह शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से युक्त एक पूर्ण इकाई है, और समाज को इसी समग्र दृष्टिकोण से देखना चाहिए। उपाध्याय ने ज़ोर दिया कि अर्थनीति केवल लाभ कमाने का माध्यम नहीं होनी चाहिए, बल्कि वह धर्मबोध, कर्तव्यनिष्ठा और समाज कल्याण के मूल्यों से जुड़ी होनी चाहिए। उनका विचार था कि जब तक नीति और नैतिकता का समन्वय नहीं होगा, तब तक सच्चे अर्थों में समावेशी और टिकाऊ विकास संभव नहीं है। वर्तमान समय में जब नैतिक पतन, भ्रष्टाचार और सामाजिक विषमता की चुनौतियाँ दिन-ब-दिन बढ़ रही हैं, उपाध्याय का यह दृष्टिकोण हमें आत्मचिंतन का अवसर देता है और एक ऐसे वैकल्पिक मॉडल की ओर ले जाता है, जिसमें आर्थिक उन्नति के साथ-साथ नैतिक और सांस्कृतिक उत्थान भी सुनिश्चित हो। उनके विचार आज की शिक्षा, राजनीति, प्रशासन और समाजिक जीवन के हर क्षेत्र में नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना की प्रेरणा देते हैं।[32]

दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत 'भारतीय मॉडल' न केवल आर्थिक विकास की एक वैकल्पिक दृष्टि प्रदान करता है, बल्कि यह भारतीय जीवन-दर्शन, सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक संरचना की आत्मा से भी जुड़ा हुआ है। उनका मानना था कि किसी भी राष्ट्र की विकास प्रक्रिया उसकी आत्मा, परंपरा और सांस्कृतिक संदर्भों से कटकर नहीं चल सकती। पश्चिमी मॉडल, जो मुख्यतः भौतिक समृद्धि, उपभोग, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और लाभ-संचयन पर आधारित है, भारतीय समाज के मूल स्वभाव से मेल नहीं खाता। पश्चिम जहां मनुष्य को केवल एक उपभोक्ता के रूप में देखता है, वहीं भारतीय सोच में मनुष्य एक नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक प्राणी है। दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार भारतीय समाज का उद्देश्य केवल भौतिक सुख-सुविधाएं अर्जित करना नहीं है, बल्कि वह धर्म (कर्तव्य और नैतिकता), अर्थ (सामाजिक समृद्धि), काम (संतुलित इच्छाएं) और मोक्ष (आध्यात्मिक उन्नति) के बीच संतुलन स्थापित कर पूर्ण जीवन की साधना करता है। यही चार पुरुषार्थ भारतीय जीवन-दर्शन की धुरी हैं। उनका यह विचार न केवल अर्थनीति को एक नैतिक और सांस्कृतिक आयाम देता है, बल्कि यह यह भी स्पष्ट करता है कि विकास केवल जीडीपी या आर्थिक वृद्धि तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि उसका उद्देश्य सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक संरक्षण, आत्मनिर्भरता और मानवीय गरिमा की रक्षा भी होना चाहिए। आज जब दुनिया विकास के पश्चिमी मॉडल की सीमाओं और उसके दुष्परिणामों - जैसे कि पर्यावरण संकट, सामाजिक विघटन और मानसिक तनाव - को महसूस कर रही है, तब उपाध्याय का भारतीय मॉडल एक वैकल्पिक, समग्र और संतुलित दृष्टिकोण के रूप में उभरता है। यह मॉडल न केवल भारत के लिए बल्कि वैश्विक विकास विमर्श के लिए भी एक नई दिशा प्रस्तुत करता है।[33]

दीनदयाल उपाध्याय की 'जीवंत समाज' की संकल्पना भारतीय समाज की गहन अंतर्धारा को समझने का एक विशिष्ट प्रयास है। वे समाज को एक गतिशील, सजीव और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध इकाई मानते थे, जो केवल भौतिक संस्थाओं या वर्गों का यांत्रिक समुच्चय नहीं है, बल्कि एक सजीव चेतना से युक्त 'चैतन्य' इकाई है। उनके अनुसार जैसे शरीर में प्रत्येक अंग का एक विशिष्ट कार्य और स्थान होता है, वैसे ही समाज में हर वर्ग, हर व्यक्ति, हर परंपरा और हर सांस्कृतिक तत्व का एक अद्वितीय महत्व होता है। समाज को सही मायनों में विकसित और स्थायी बनाने के लिए आवश्यक है कि सभी वर्गों के बीच परस्पर सहयोग, संतुलन और मूल्य आधारित सहभागिता बनी रहे। यह दृष्टिकोण केवल वर्ग-समन्वय का नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और उत्तरदायित्व की पुनर्व्याख्या भी करता है। उपाध्याय का मानना था कि यदि समाज अपने मूल आत्मा - अर्थात संस्कृति, नैतिकता, पारंपरिक ज्ञान और सामूहिक चेतना - के अनुसार आगे बढ़े, तो वह कभी दिशाहीन नहीं होगा। यह संकल्पना आज के उस समय में विशेष रूप से प्रासंगिक है जब समाज तेजी से उपभोक्तावाद, व्यक्तिवाद और सामाजिक विघटन की ओर बढ़ रहा है। वर्तमान वैश्विक और राष्ट्रीय संदर्भ में, जब सामाजिक ताने-बाने में विघटन और असमानता की चुनौतियाँ गहराती जा रही हैं, उपाध्याय की यह जीवंत समाज की अवधारणा अधिक समरस, समतामूलक और टिकाऊ समाज निर्माण की दिशा में एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान करती है। इससे न केवल समाज की आत्मा को जाग्रत किया जा सकता है, बल्कि सामाजिक नीति में समन्वय और संतुलन की स्थायी भावना भी विकसित की जा सकती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचार न केवल आज के भारत के लिए प्रासंगिक हैं, बल्कि वे भविष्य की सामाजिक-आर्थिक दिशा को भी मूल्यनिष्ठ और भारत-केंद्रित बनाने की सामर्थ्य रखते हैं। उनका चिंतन एक ऐसा समग्र मॉडल प्रदान करता है, जो विकास के साथ-साथ संस्कृति, मानवता और न्याय को भी समान रूप से महत्व देता है।[34]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का सामाजिक-आर्थिक दर्शन भारतीय संस्कृति की उस सनातन परंपरा में निहित है, जिसमें मानव को केवल एक उपभोक्ता या उत्पादक मात्र नहीं, बल्कि एक चैतन्य, नैतिक, और आध्यात्मिक सत्ता के रूप में देखा जाता है। उन्होंने ऐसे समय में *एकात्म मानववाद* का प्रतिपादन किया, जब भारत राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर चुका था, किंतु उसकी नीतियाँ अभी भी पश्चिमी विचारधाराओं से प्रभावित थीं। एक ओर पूंजीवादी विचारधारा समाज को भौतिक उपभोग की ओर ले जा रही थी, तो दूसरी ओर साम्यवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता का दमन कर रहा था। इन दोनों के बीच उपाध्याय जी ने एक ऐसी विचारधारा का बीजारोपण किया, जो भारतीय परंपरा, मूल्य और सामाजिक यथार्थ के अनुकूल थी। उनका मानना था कि भारत को अपनी नीतियों और विकास की दिशा के लिए किसी बाहरी मॉडल की आवश्यकता नहीं है, बल्कि भारत की संस्कृति, उसकी आध्यात्मिकता, ग्राम्य जीवन, सामाजिक संरचना और सहअस्तित्व की भावना में ही एक समग्र और टिकाऊ विकास का मार्ग छिपा है। उन्होंने व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के बीच संबंध को शरीर, मन और आत्मा की तरह देखा - तीनों एक-दूसरे के पूरक और आवश्यक हैं। एकात्म मानववाद केवल एक आर्थिक दर्शन नहीं है; यह एक *जीवन-दर्शन* है। इसके केंद्र में है – व्यक्ति का समग्र विकास। उपाध्याय जी मानते थे कि मनुष्य के चार आयाम होते हैं – शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा – और किसी भी नीति या व्यवस्था का मूल्यांकन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि वह इन चारों आयामों को किस हद तक संतुलित और पुष्ट करती है। वे केवल आर्थिक प्रगति को विकास का पैमाना नहीं मानते थे, बल्कि सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक संरक्षण, और नैतिक चेतना को भी उतना ही महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने *धर्म*, *अर्थ*, *काम* और *मोक्ष* – इन चार पुरुषार्थों की व्याख्या करते हुए यह बताया कि अर्थ और काम की अभिव्यक्ति धर्म के अधीन रहकर ही समाज के कल्याणकारी रूप में परिवर्तित हो सकती है। उनकी दृष्टि में धर्म का अर्थ संप्रदाय या पूजा-पद्धति नहीं, बल्कि वह शाश्वत नैतिक व्यवस्था है, जो व्यक्ति और समाज को संतुलन में रखती है। यही कारण है कि उन्होंने *कर्तव्यबोध* को आर्थिक व्यवहार का आधार बनाने की बात की, और लाभ को केवल एक माध्यम माना, न कि उद्देश्य। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का *अंत्योदय* का सिद्धांत इस विचारधारा की व्यवहारिक अभिव्यक्ति है। उनके अनुसार, जब तक समाज का अंतिम और सबसे वंचित व्यक्ति सम्मानपूर्वक जीवन नहीं जी पाता, तब तक किसी भी राष्ट्र की प्रगति अधूरी है। यह विचार गांधी के 'ग्राम स्वराज' और 'अंतिम व्यक्ति' की अवधारणा से भी जुड़ता है, परंतु उपाध्याय जी ने इसे एक संगठित राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण में परिवर्तित कर दिया।

आज वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, और बाजार आधारित पूंजीवाद की अंधी दौड़ में जहां समाज नैतिक विघटन और संवेदनहीनता की ओर बढ़ रहा है, वहीं पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचार एक विकल्प के रूप में सामने आते हैं। उनके चिंतन में न तो आधुनिकता का विरोध है, न ही प्रगति से परहेज। वे केवल यह चाहते थे कि भारत की प्रगति उसकी आत्मा को खोए बिना हो एक ऐसी आत्मा जो सहअस्तित्व, सेवा, समरसता और सांस्कृतिक चेतना से युक्त हो। आज जब हम भारत को 'विकसित राष्ट्र' की दिशा में अग्रसर करने की बात करते हैं, तो केवल सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि, तकनीकी प्रगति या बुनियादी ढांचे के निर्माण से बात पूरी नहीं होती। हमें यह विचार करना होगा कि क्या हमारी नीतियाँ समाज के प्रत्येक वर्ग, विशेषकर वंचित और पिछड़े वर्गों, को लाभ पहुँचा रही हैं? क्या हम नैतिक मूल्यों को संरक्षित रखते हुए आर्थिक विकास कर रहे हैं? क्या हम आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हैं या फिर विदेशी पूंजी और विचारों पर ही निर्भर होते जा रहे हैं? इन सभी प्रश्नों का उत्तर *एकात्म मानववाद* के दर्शन में छिपा हुआ है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय का दर्शन केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की दिशा है। उनके विचार न केवल समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों के लिए, बल्कि शिक्षाविदों, नीति-निर्माताओं, और सामान्य नागरिकों के लिए भी पथप्रदर्शक हैं। एक ऐसा समाज जहाँ व्यक्ति स्वतंत्र हो, परंतु सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक हो; जहाँ विकास हो, परंतु नैतिक मूल्यों के साथ; और जहाँ आधुनिकता हो, परंतु सांस्कृतिक चेतना के साथ - यही उपाध्याय जी के *एकात्म मानववाद* की सच्ची भावना है। यह दर्शन आज के भारत को एक समृद्ध, सशक्त और नैतिक राष्ट्र बनाने में मार्गदर्शन दे सकता है।

संदर्भ सूची:-

1. उपाध्याय, दीनदयाल, *एकात्म मानववाद*, नई दिल्ली, 1965, पृ.25.
2. शर्मा, रमेश, *पंडित दीनदयाल उपाध्याय: जीवन, दर्शन और विचारधारा*, नई दिल्ली, 2016, पृ.98.
3. त्रिपाठी, शिवकुमार, *भारतीय राजनीतिक चिंतन में एकात्म मानववाद*, वाराणसी, 2017, पृ.65.
4. सिंह, अजय कुमार, *पंडित दीनदयाल उपाध्याय का वैकल्पिक विकास दृष्टिकोण*, पटना, 2019, पृ.78.
5. जोशी, अरुण, *भारत की राजनीति में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद*, दिल्ली, 2015, पृ.115.
6. मिश्रा, राजीव, *भारतीय आर्थिक चिंतन और एकात्म मानववाद*, लखनऊ, 2020, पृ.45.
7. उपाध्याय, दीनदयाल, *पूर्वोक्त*, पृ.25.
8. उपाध्याय, दीनदयाल, *पंडित दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय (खंड 2)*, नई दिल्ली, 2002, पृ.82.
9. शर्मा, हरिनारायण, *भारतीय राजनीति में दीनदयाल उपाध्याय का योगदान*, वाराणसी, 2010, पृ.118.
10. सिंह, अजय कुमार, *एकात्म मानववाद: दार्शनिक और सामाजिक दृष्टिकोण*, पटना, 2014, पृ.69.
11. शुक्ल, कमलेश, *समरस समाज की अवधारणा और दीनदयाल उपाध्याय*, इलाहाबाद, 2016, पृ.113.
12. दुबे, रमेशचंद्र, *भारतीय विचारक: दीनदयाल उपाध्याय का समाजदर्शन*, भोपाल, 2018, पृ.86.
13. पांडेय, रामसुमेर, *राजनीतिक चिंतन के भारतीय आयाम*, वाराणसी, 2012, पृ.125.
14. द्विवेदी, धर्मनाथ, *एकात्म मानववाद और समावेशी समाज*, लखनऊ, 2019, पृ.67.
15. तिवारी, मोहनलाल, *दीनदयाल उपाध्याय और भारतीय समाजवाद*, दिल्ली, 2020, पृ.56.
16. उपाध्याय, दीनदयाल, *पूर्वोक्त*, पृ.62.
17. उपाध्याय, दीनदयाल, *राष्ट्र जीवन की दिशा*, लखनऊ, 1966, पृ.42-44.
18. मिश्र, राकेश कुमार, *दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिन्तन*, दिल्ली, 2017, पृ.89-91.
19. शर्मा, हरिकृष्ण, *पंडित दीनदयाल उपाध्याय: विचार और दर्शन*, जयपुर, 2019, पृ.105-107.
20. गोयल, श्याम सुंदर, *एकात्म मानवदर्शन और आधुनिक भारत*, वाराणसी, 2020, पृ.76.
21. प्रसाद, अनिल कुमार, *पंडित दीनदयाल उपाध्याय और स्वदेशी आर्थिक चिंतन*, नई दिल्ली, 2015, पृ.79.
22. तिवारी, मोहनलाल, *पूर्वोक्त*, पृ.49.
23. अग्रवाल, रमेश, *एकात्म मानववाद और भारतीय अर्थनीति*, नई दिल्ली, 2020, पृ.60-62.
24. तिवारी, मोहनलाल, *दीनदयाल उपाध्याय और भारतीय समाजवाद*, दिल्ली, 2020, पृ.49.
25. उपाध्याय, दीनदयाल, *पूर्वोक्त*, पृ.65.
26. शर्मा, रमेश, *पूर्वोक्त* , पृ.98-100.
27. सुरेश, नीलकंठ, *समकालीन भारत में अंत्योदय की प्रासंगिकता*, मुंबई, 2021, पृ.103.
28. मोदी, नरेंद्र, *भारत का आत्मनिर्भर अभियान*, नई दिल्ली, 2022, पृ.125.
29. सिंह, बृजमोहन, *भारतीय अर्थनीति: स्वदेशी दृष्टिकोण*, जयपुर, 2019, पृ.47.
30. जोशी, मुरली मनोहर, *दीनदयाल उपाध्याय का वैचारिक विमर्श*, नई दिल्ली, 2017, पृ.94.
31. कश्यप, सुदर्शन, *सहकारिता आधारित विकास और भारत*, भोपाल, 2020, पृ.24-25.
32. *भारतीय जनसंघ दस्तावेज, एकात्म मानवदर्शन और नीतिगत आधार*, नई दिल्ली, 1965, पृ.37.
33. यादव, सुरेन्द्र, *दीनदयाल उपाध्याय और भारतीय आर्थिक चिंतन*, नई दिल्ली, 2020, पृ.56.
34. अग्रवाल, रमेश, *एकात्म मानववाद और भारतीय अर्थनीति*, नई दिल्ली, 2020, पृ.76.